श्रमण-जीवन से शिक्षाएँ

संकलन : श्री नवरतन डागा

श्रमण-जीवन में जो कार्य अनाचरणीय हैं, उनमें से कुछ कार्यों का श्रावक भी त्याग कर सकता है। श्रमण-जीवन श्रावक के लिए आदर्श होता है। वह श्रमणों के जीवन से जितना व्रत-नियम में आगे बढ़ेगा, उतना ही जीवन को सार्थक करेगा। इस अमूल्य मानव जीवन की महत्ता को समझकर इसका सदुपयोग करने में ही बुद्धिमत्ता है, यह संदेश प्रस्तुत आलेख से प्राप्त होता है। -सम्पादक

श्रमण जीवन उत्कृष्ट जीवन है। आचार्य हस्ती के शब्दों में- ''श्रमण के दो अर्थ मुख्य हैं। एक तो यह कि तप और संयम में जो अपनी पूरी शक्ति लगा रहा है, तपस्वी है वह श्रमण है। दूसरा अर्थ है 'समण' अर्थात् त्रस, स्थावर सब प्रकार के प्राणियों की जिसके अन्तःकरण में हित-कामना है, वह श्रमण है।''

संसार की मोह-माया को त्याग कर, अपने इन्द्रियों को वश में करने का प्रयास कर साधना के क्षेत्र में आगे बढ़ने वाले श्रमण श्रेष्ठों का जीवन सदैव प्रेरणादायी रहा है। प्रभु महावीर ने श्रमण-जीवन को सुदृढ़ एवं साधनाशील बनाने के लिए आचार-संहिता बताई है। उन्होंने श्रमण के अशन, वस्त्र, पात्र, निवास-स्थान के संबंध में बताया है कि श्रमण के निमित्त यदि कोई वस्तु बनाई गई हो या पुराने पदार्थ में नवीन संस्कार किया गया हो तो वह साधु के लिए अग्राह्य है। यदि अनुद्दिष्ट वस्तु मिल जाए और उनके लिए उपयोगी हो तो वे उसे ग्रहण कर सकते हैं। जैन श्रमण बौद्ध और वैदिक परम्परा के भिक्षुओं की तरह किसी के घर पर भोजन का निमन्त्रण भी ग्रहण नहीं करते हैं।

हमारे पूजनीय गुरुजनों का जीवन कैसा होता है? उनकी साधना कितनी कठोर होती है? यह सब जानते हुए, समझते हुए क्या हम उनके जीवन से कुछ शिक्षाएं ग्रहण कर सकते हैं? उनकी प्रत्येक क्रिया हमारे लिए भी कुछ संदेश देती है। जहाँ एक ओर साधु-साध्वी पंच महाव्रतधारी होते हैं तो हमारे लिए भी 12 व्रतों को धारण करने की प्रेरणा की जाती है। एक साथ अगर 12 व्रत स्वीकार न कर सकें तो एक-एक कर भी हम व्रतों को स्वीकार कर सकते हैं। पूर्ण व्रतों को स्वीकार न कर सकें, तो भी व्रतों में मर्यादा रखकर उसे स्वीकार किया जा सकता है। साधु-साध्वियों के व्रतों में कोई छूट नहीं होती, परन्तु श्रावक-श्राविकाएं छूट के साथ व्रत-प्रत्याख्यान ग्रहण कर सकते हैं। साधु-साध्वियों के व्रत मोती के समान होते हैं जो अमूल्य होते हैं। मोती के टूटने पर उसकी कोई कीमत नहीं रहती, उसी प्रकार श्रमण-जीवन में व्रत के टूटने पर श्रमण-जीवन स्थिर नहीं रह

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पाता। श्रावक-श्राविकाओं के व्रत सोने के समान होते हैं। सोना एक ग्राम हो या सौ ग्राम, सबकी कीमत वजन के हिसाब से होती है अर्थात् श्रावक जितने-जितने व्रत धारण करता है उसकी कर्म-निर्जरा उसी अनुसार होती है।

साधु-साध्वियों को उनके साधक जीवन में टालने योग्य जो अनाचार बताए गए हैं, उनमें कई का त्याग हम अपने जीवन में पूर्ण रूप से अथवा मर्यादा के साथ कर सकते हैं, जैसे-

1. साधुओं के लिए रात्रि भोजन निषेध बताया गया है। यह त्याग श्रावक-श्राविकाओं के लिए भी आवश्यक है। एक सच्चे जैनी का लक्षण ही रात्रि-भोजन त्याग बताया गया है। यह हमारी पहचान है।
2. साधक के लिए स्नान को भी अनाचीर्ण कहा गया है। दशवैकालिक सूत्र के छठे अध्ययन में भी कहा गया है कि रोगी हो अथवा नीरोगी, जो भी साधक स्नान की इच्छा करता है वह आचार से फिसल जाता है और उसका जीवन संयमहीन हो जाता है। हिंसा के साथ स्नान, विभूषा का कारण होने से भी साधक के लिए वर्जनीय कहा गया है। यथासंभव हम भी स्नान का त्याग कर सकते हैं। बड़ी स्नान का पूर्ण त्याग किया जा सकता है, सप्ताह में दिनों की मर्यादा करके भी स्नान का त्याग किया जा सकता है।
3. चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थ और फूल माला का सेवन साधु के लिए निषिद्ध है। इससे वनस्पतिकाय के जीवों की विराधना होती है। श्रावक-श्राविकाएँ भी इनका पूर्ण रूप से अथवा मर्यादा के साथ त्यागकर जीवों की विराधना से बच सकते हैं।
4. तैल आदि से बिना कारण शरीर का मर्दन करना संवाहन कहा जाता है। साधु-साध्वी तो देहासक्ति से बचने के लिए इससे दूर रहते हैं। बिना कारण तो अधिकतर श्रावक-श्राविकाएं भी इसका उपयोग नहीं करते हैं, अतः मर्यादा के साथ इसका त्याग करना भी श्रेयस्कर है।
5. अपने अंग-उपांग की सुन्दरता के लिए दूसरे से पूछना अथवा आरम्भ-समारम्भ सम्बन्धी अनावश्यक प्रश्न पूछना साधुओं के लिए तो निषिद्ध है ही, श्रावकों को भी यथासंभव आरम्भ-समारम्भ से बचना चाहिए।
6. जुआ, शतरंज आदि खेल जिनमें हार-जीत का दांव लगाया जाता है, उससे कर्मबंधन होता है। सप्तकुव्यसन में भी इन्हें गिना जाता है, अतः प्रत्येक जैन श्रावक-श्राविका का कर्त्तव्य है कि वह इसका अवश्य त्याग करे।
7. जैन श्रमण तो परीषह सहने और हिंसा से बचने के लिए जूते-चप्पल एवं पादुका का भी उपयोग नहीं करते। हमसे भी जितना हो सके इनका त्याग अवश्य करना चाहिए। ज्यादा नहीं तो कम से कम पर्युषण के आठ दिनों में तो अवश्य ही जूते-चप्पल का त्याग अपेक्षित है।
8. सचित्त कन्द-मूल का लेना भी साधु के लिए अग्राह्य है। जैन धर्म के अनुसार जमीकन्द में असंख्य जीव माने गये हैं, उन जीवों की हिंसा से बचने के लिए प्रत्येक जैन को जमीकन्द का त्याग करना आवश्यक

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

है।

इनके अतिरिक्त भी जो अनाचार साधुओं के लिए बताए गए हैं, उनमें से हम भी मर्यादा के साथ त्याग करके कर्म रूपी आस्रव को रोक सकते हैं। गृह को त्याग कर साधना में रत रहने वाले श्रमण-निर्ग्रन्थों की तरह अगर हम नहीं बन सकते तो कम से कम गृहस्थी में रहते हुए कर्म-बंधनों से जितना मुक्त हो सकें उतना तो हमें प्रयास करना ही चाहिए।

आचारांग सूत्र में अनगार के कुछ लक्षण बताते हुए सबसे पहला लक्षण बताया कि श्रमण ऋजुकृत हो अर्थात् सरल आचरण वाला हो। जिसका मन एवं वाणी कपट रहित हो तथा जिसकी कथनी-करनी में एकरूपता हो वही ऋजुकृत कहलाता है। ऋजु आत्मा मोक्ष के प्रति सहज भाव से समर्पित होता है, इसलिए अनगार का दूसरा लक्षण बताया-नियाग प्रतिपन्न अर्थात् उनकी साधना का लक्ष्य भौतिक ऐश्वर्य या यशःप्राप्ति न होकर आत्मा को कर्ममल से मुक्त करना होता है। तीसरा लक्षण बताया गया 'अमाय' अर्थात् माया रहित होना। चौथा लक्षण बताया विस्रोतसिका अर्थात् लक्ष्य के प्रति शंका व चित्त की चंचलता के प्रवाह में न बहे, शंका का त्याग करे। जिस श्रद्धा के साथ संयम-पथ पर कदम बढ़ाया है, उसी श्रद्धा के साथ संयम का पालन करे।

इन लक्षणों को हम अपने जीवन में भी उतारने का लक्ष्य रखें। हम अपने जीवन को सरल बनाएं। मोक्ष की अभिलाषा तो हम सभी की है, परन्तु क्या हम उस ओर कदम बढ़ा रहे हैं? माया से रहित होकर यदि हम अपनी दिनचर्या के कार्यक्रम संपादित करेंगे तो अवश्य ही कर्ममल से दूर होंगे।

आचारांग सूत्र हमें शिक्षा देते हुए कहता है कि पांच इन्द्रियों के पांच ग्राह्य विषय-शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श हैं। ये ऊँची, नीची आदि सभी दिशाओं में मिलते हैं। इन्द्रियों के द्वारा आत्मा इनको ग्रहण करता है, सुनता है, देखता है, सूंघता है, चखता है और स्पर्श करता है। ग्रहण करना इन्द्रिय का गुण है, गृहीत विषयों के प्रति मूर्च्छा करना मन या चेतन का कार्य है। जब मन विषयों के प्रति आसक्त होता है तब विषय मन के लिए बंधन बन जाता है। शास्त्रकार बताते हैं कि रूप एवं शब्द का देखना-सुनना स्वयं में कोई दोष नहीं है, किन्तु उनमें आसक्ति होने से आत्मा इनमें मूर्च्छित हो जाता है, फंस जाता है। यह आसक्ति ही संसार है। अनासक्त आत्मा संसार में स्थित रहता हुआ भी संसार से मुक्त बनने की कोशिश करता है। हम भी संसार में रहते हुए संसार से मुक्त बन सकते हैं।

संसार त्याग कर प्रत्येक व्यक्ति दीक्षा ग्रहण नहीं कर सकता। परन्तु संसार में रहते हुए अपने परिग्रह में यथासम्भव कमी तो कर ही सकता है। जो परिग्रह को बढाता है, उसके प्रति चाहना रखता है वह स्वयं के सुख के लिए दूसरों के सुख-दुःख की भी परवाह नहीं करता, वह शोषक तथा उत्पीडक भी बन जाता है। इस तरह से परिग्रह के साथ हिंसा का भी अनुबंध स्वतः हो जाता है। सुख की इच्छा से व्यक्ति धन का संग्रह करता है किन्तु धन से कभी सुख नहीं मिलता, अन्त में उसे दुःख, शोक, चिन्ता और क्लेश ही प्राप्त होता है। हमारा चिन्तन

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चलता है- 'यह किया, अब यह करना है'। वास्तविक जीवन से दूर भागकर सपनों की दुनियां में हम खो जाते हैं। शास्त्रकार भी कहते हैं कि परिग्रही व्यक्ति सोने के समय सो नहीं पाता, भोजन के समय भोजन नहीं कर पाता। रात-दिन उसके सिर पर परिग्रह का भूत चढा रहता है। संसार में परिग्रह और हिंसा के कारण ही समस्त दुःख व पीड़ाएं होती हैं तथा संसार का परिभ्रमण बढ़ता है; यह जानकर, समझकर हम परिग्रह को कम करने का प्रयत्न करें।

100 करोड़ जीव जब मरते है तो 99 करोड तिर्यंच बनते हैं।
1 करोड़ जीव जब मरते है तो 99 लाख नरक में जाते हैं।
1 लाख जीव जब मरते है तो 99 हजार देवता बनते हैं।
1 हजार जीव जब मरते है तो 900 सम्मूर्च्छिम मनुष्य बनते हैं।
100 जीव जब मरते है तो 90 अनार्य देश में जन्मते हैं।
10 जीव जब मरते है तो 9 अधर्मी होते हैं।

हम सौभाग्यशाली हैं कि हमें मनुष्य भव मिला और उसके साथ ही उत्तम कुल, उत्तम धर्म भी प्राप्त हुआ अर्थात् जैन कुल मिला। जिन महापुरुषों ने मनुष्य भव की उपयोगिता को समझकर अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाते हुए संसार को त्यागकर साधना की ओर कदम बढाया है वे पूजनीय हैं, आदरणीय हैं, श्रेष्ठ हैं। उनके आचारमय श्रेष्ठ जीवन से हम भी प्रेरणा प्राप्त कर साधना की ओर अपने कदम गतिशील करें, इसी पावन कामना के साथ।

-संयोजक-श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ
'डागा टावर', 898-ए-1, दूसरी डी रोड़, सरदारपुरा-342003 (जोधपुर)
फोन : 0291-2654427, 098280-32215 (मोबाइल)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org